Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)
VOL- VIII ISSUE- IV APRIL 2021 PEER REVIEW e-JOURNAL IMPACT FACTOR 7.149 ISSN 2349-638x

डॉ. जयप्रकाश कर्दम के साहित्य में स्त्री-विमर्श

श्रीमती पंकज यादव
जे.आर.एफ. (हिन्दी)
शोधार्थिनी, हिन्दी विभाग
जे. एस. विश्वविद्यालय शिकोहाबाद (फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।
मेल- kumaripankajyadav@gmail.com

इतिहास के प्रारम्भिक रूप को देखने से ज्ञात होता है कि स्त्री का आत्मसंघर्ष अपनी निरंतरता में प्रत्येक युग में विद्यमान रहा हैं । खेती की शुरूआत तथा एक जगह बस्ती बनाकर रहने की शुरूआत नारी ने ही की थी, इसलिए सभ्यता और संस्कृति के प्रारम्भ में नारी है । शुरू से ही नारी परिवार का केन्द्र बिन्दु रही है। परम्परागत दृष्टि से स्त्री के प्रति निर्मित सामाजिक व्यवस्था के मानकों और नैतिकताओं से संचालित होता रहा हैं, जिसमें स्त्री को तय कर दी गयी भूमिकाओं में जीना हैं। उनकी सीमा के निर्धारण का अधिकार पुरूष ने सदियो से अपने पास रखा हैं । समय के बदलते मापदण्डों के बावजूद आज भी उनको दोयम दर्जा प्राप्त है । परिवर्तित होते सामाजिक संदर्भों में उसकी सामाजिक स्थिति और भूमिका में आज भी परिवर्तन नहीं हुए हैं ।

स्त्री अस्मिता की लड़ाई आधी आबादी को मनुष्यता का दर्जा दिलाने की लड़ाई हैं। उसके मनुष्य होने को स्वीकार करना आज मानवता के सबसे महत्वपूर्ण मुद्दों में से एक हैं। स्त्री विमर्श जीवन के अनछुये अनजाने पीड़ा के संचार से हमें परिचित होने का अवसर प्रदान करता हैं। साथ ही इस विमर्श का उद्देश्य साहित्य और वास्तविक जीवन में स्त्री के दोयम दर्जे की स्थिति पर आंसू बहाने और यथास्थिति बनाये रखने के स्थान पर उन कारकों की खोजन से है, जो स्त्री की वर्तमान स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं। स्त्री विमर्श स्वयं की स्थिति के बारे में सोचने और निर्णय करने का विमर्श हैं। आधी आबादी के नाम से जाने जानी वाली 'स्त्री' की दुनिया सदियों से उत्पीड़ित, उपेक्षित और अधिकारों से वंचित रही हैं । तमाम समाज सुधारकों के प्रयासों के बावजूद स्त्री अधिकारिता में उसके शिक्षित और संगठित होने का पक्ष ही जूठा हैं। हिन्दी के साहित्यकारों ने स्त्रियों को उनकी दीन-दशा से उबारने के लिये बहुविध रचना कर्म किए । यह स्वयं चेती हुई स्त्री के पाए हुये स्वाधिकार हैं, जहाँ उसे अपने खिलाफ होने वाले हर गैर-वाजिव सलूक से खुद निपटना है, उस संघर्ष का निर्णय स्त्री के स्वविवेक से ही हो सकता है अलग-अलग श्रेणी, वर्ग, जाति, नस्ल की होते हुए भी जेण्डर भेद के धरातल पर सारी दुनियाँ में स्त्री संघर्ष एक सा है क्योंकि उसकी लड़ाई हर जगह पितृसत्तात्मक व्यवस्था से हैं , जबकि उन दिनों परिवार मातृसत्तात्मक था । किन्तु कालान्तर में धीरे-धीरे सभी समाजों में सामाजिक व्यवस्था मातृ-सत्तात्मक से पितृसत्तात्मक होती गई और नारी समाज के हाशिए पर चली गई।

मनु जैसे शास्त्रकारों ने नारियों को शिक्षित करने को पाप और अपराध करार दिया। इसी कारण परम्पराओं, अंधविश्वासों और अज्ञानता की प्रतिमूर्ति

नारियां आज भी अशिक्षित है इन्हें शिक्षा से दूर रखने के पीछे उनकी यही मंशा थी कि वे अज्ञानतावश मूल पशुओ की भांति पुरूषों के सभी क्रूरतम अत्याचार एंव अन्याय सहती रहें। इसलिये बाबा साहब ने हिन्दू धर्म के पाखंड को खत्म कर दलित स्त्रियो/पुरूषो को वैज्ञानिक आधार पर सम्मानपूर्वक जीने का रास्ता दिखाया। हिन्दू धर्म की विकृतियों से मुक्ति पाने के लिये उन्होनें तीन बाते कही......... "शिक्षित हो, संघर्ष करो और संगठित हो।"[1]

सही मायने में कहा जाए कि जहां पर समाज का कोई अस्तित्व न हो, वहाँ पर मानव जीवन का कोई मूल्य नहीं हो सकता । क्योंकि साहित्य उसी समाज का वास्तविक दर्पण होता है जो कि लेखक के तमाम मनोभावों को समाज में हो रही तमाम घटनाओं का वैचारिक लेख होता है। किसी विशेष साहित्यकार का भी शास्त्रीय नियमों के आधार पर ढेर सारे शोध हुए हैं। आज में सबसे अधिक सोचने के लिए बाध्य किया है- सामाजिक परिवेश ने। प्रगति के सोपान हम पार कर चुके हैं। परंतु गांव के बाहर रहने वाला आदमी आज भी विकास और व्यवस्था की सोच के बाहर ही है। अनेक पंचवर्षीय योजनाएं आयी, विज्ञान में अनेक नवीन विषय शोध किए पर ऐसा एक भी शोध नहीं हुआ कि पीड़ित बहिष्कृत आदमी की अवस्था ऐसी क्यों है। इसके लिए कौन जिम्मेदार है। अर्थात दलितों का जीवन बदलने के लिए मात्र कागज पर घोषणाएं की जाती है। परंतु असलियत में ऐसा कुछ भी नहीं होता है। यह पूरी तरह सच्चाई है। अगर इसको समझना है। तो हिंदी के दलित लेखक डॉक्टर जयप्रकाश कर्दम जी के साहित्य को पढना होगा।

हिन्दी पट्टी में दलित साहित्य को सामने लाने वाले, उसको स्थापित करने वाले और परम्परागत हिन्दी साहित्य के समानान्तर दलित साहित्य के बुनियादी सरोकारों को उजागर करने में जिन दलित साहित्यकारों का योगदान है, उनमें डॉ. जयप्रकाश कर्दम एक-जाने माने साहित्यकार है । वह दलित साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं और अपने व्यगक्तित्व सृजनकर्म के बूते अपने समकालीनों में काफी चार्चित और समृद्ध है ।

हिन्दी साहित्य जगत में अपना हस्ताक्षर स्थापित करने के पश्चात कर्दम जी समाज का, जो यथार्थ और अनूठा रूप वर्तमान समाज के सामने उपस्थित कर रहे हैं, वह अपने आप में विलक्षण हैं। दलित जीवन को आधार बनाकर उन्होने साहित्य जगत में पदार्पण किया साहित्य को अनेकानेक विधाओं को अपनी लेखनी की तूलिका में स्थान दिया । कविता, कहानी, उपन्यास, समीक्षा, संपादन, बाल साहित्य, अनुवाद जैसी हिन्दी साहित्य की अनेकानेक विधाओं को परिमार्जित किया और निरंतर कर रहे हैं ।

डॉ. जय प्रकाश कर्दम ने अपनी काव्य रचनाओं में दलित स्त्री को केन्द्र बनाया हैं क्योंकि सवर्ण समाज की मानसिकता दलितों को गुलाम बनाये रखने की रही है और वे उन्हें आज भी गुलाम से ज्यादा कुछ नहीं समझते तथा अपनी सवर्णवादी सोच की संकीर्णता से दलितों को छुटकारा देना ही नहीं चाहते हैं । दलित स्त्री की मजबूरी का फायदा उठाकर सामंती सोच वालों के द्वारा उनका शारीरिक एवं मानसिक शोषण आज भी जारी है। आज भी दलित महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति की मजबूरी का फायदा समाज के ठेकेदारों द्वारा उनकी अस्मिता को तार-तार करके उठाया जा रहा है। डॉ. जयप्रकाश कर्दम ने दलित स्त्री के उस सामाजिक यथार्थ को ही अपनी कविताओं के द्वारा यथार्थ और मार्मिक ढंग से चित्रित किया हैं । इसका उदाहरण उनकी इन काव्य पंक्तियों में देखा जा सकता है-

"इनके शयन कक्षों में विखरे हैं
मेरी बहनों और बेटियों की
रौदीं गयी अस्मिता के निशान"[2]

इन्होंने पुरुष प्रधान समाज में नारियों पर हो रहे अनेकानेक अत्याचारों पर लेखनी चलाई हैं । पुरुष,

नारी के प्रति कैसी संर्कीण भावना निर्मित करके अपने मन में फलीभूत होता हैं?ऐसे अनेक प्रश्नों को जयप्रकाश कर्दम ने अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है ।

शहरी एवं ग्रमीण क्षेत्रों में जीवनयापन करती हुई स्त्रियाँ किन-किन समस्यओं का सामना कर रही हैं । यह इनकी रचनाओं में भलीभांति देखने को मिलते हैं । इन्होंने स्त्री जीवन के प्रत्येक पहलू पर विहंगम दृष्टि डाली हैं और स्वतंत्रत साहित्यकार की तरह उन समस्याओं को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत करने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी है ।

डॉ. जयप्रकाश कर्दम ने अन्तर्जातीय विवाहों पर भी करारा व्यंग्य किया हैं । अगर किसी स्वर्ण के लड़के को किसी दलित स्त्री से प्रेम हो जाता है और वह युवती उसके प्रेम को स्वीकार भी कर लेती हैं और दबाव के कारण वह युवक उस दलित स्त्री से विवाह भी कर लेता हैं । लेकिन वैवाहिक जीवन में उस दलित युवती को वह अधिकार कभी नहीं मिल पाएंगे, जो एक स्वर्ण युवती को मिलते हैं । वह दलित युवती उस स्वर्ण घर की बहु न बनकर दासी बनकर रह जाती हैं । और जब तक वह उनके शोषणों को सहन करती रहेगी तब तक सब कुछ ठीक ठाक चलता रहेगा लेकिन जिस दिन वह उनके खिलाफ विद्रोह का स्वर उजागर करेगी उस दिन उसकी जिंदगी का स्वर समाप्त कर दिया जाएगा । इसलिए डॉ. जयप्रकाश कर्दम दलित युवतियों को सावधान करते हुए कहते हैं कि-

"तेरी भावनाओ को कुचला जायेगा
तेरी आवाज को निगला जायेगा
जब तक मुह बंद किये चुपचाप
सब कुछ सहती रहेगी
तब तक ठीक है अन्यथा
तुझे छुरे से रेतकर
किरोसीन से जलाकर या
तंदूर में दून कर दिया जायेगा"[3]

कर्दम जी ने अपने नारी-विमर्श में शिक्षा के साथ-साथ उनकी समस्याओं पर भी पैनी दृष्टि डाले हैं । उनका मानना है कि पुरुष प्रधान समाज में नारी को वह स्थान मिलापाया है जिसकी वह अधिकारिणी हैं । उन्होंने नारी जीवन की प्रत्येक समस्या पर अपनी लेखनी चलाई हैं । अतीतकाल में नारी पूजनीय रही हैं । पुरुष की सहगामिनी बनकर पुरुष जीवन के प्रत्येक सोपानों पर अपना आलौकिक हस्ताक्षर की हैं । नारी की इस दशा पर जितना विहंगम परिमार्जन कर्दम जी ने दिखाया है वह किसी भी साहित्यकार के लिए चुनौती है ।

डॉ.जयप्रकाश कर्दम एक सशक्त दलित कथाकार और कवि के रूप में सामने आते हैं । उन्होंने अपने बेजोड और तीखे तेवर से हिंदी साहित्य में अपनी पहचान बनाई । मूलतः कर्दम जी ने जो भोगा है, समाज में देखा है अपनी कलम के माध्यम से हूबहू उतार दिया। कभी उपन्यासों के माध्यमों से, कभी कहानी के माध्यम तथा कविता के माध्यम से इनहोंने लिखकर समाज को जगाने की कोशिश की है । उनका छप्पर उपन्यास दलित साहित्य का पहला उपन्यास के माध्यम से अपने पात्र चंदन के जरिये समाज को जगाने का प्रयास किया। साथ ही लेखक ने बदलाव की जीती जागती रजनी को खडा किया, जो सवर्ण होते हुए भी दीन-दलितों की सहायता करती है और समानता का व्यवहार चाहती है। वह भारत देश का कल्याण चाहती है अगर हम जाति वर्ग में बंटे रहेंगे तो हमारे समाज का उत्थान नहीं होगा । इसलिए वह सवर्णों की मानसिकता बदलने का प्रयास करती है। रजनी ने सामाजिक आंदोलन की शुरूआत अपने गांव मातापुर से की है । वह दलितों को आत्मसम्मान प्राप्त करने के लिए संघर्ष करती रही । स्वतंत्रता और समानता की स्थापना करने के लिए चंदन की अगुवाई में उठ खडे आंदोलन ने उसे क्रियाशील होने के लिए प्रेरित किया । ‘‘ शुरू में मातापुर को ही अपना कार्य-क्षेत्र बनाया

उसने और गांव की दीन-दुखियों की सेवा, अशिक्षितों को शिक्षित करने तथा दलितों में आत्मसम्मान और स्वाभिमान की भावना जाग्रत करने के काम में जुट गयी वह। लेकिन धीरे-धीरे उसने अपने कार्य का विस्तार किया तथा मातापुर के अलावा अन्य गांवों और कस्बों में जहां तक भी काम करना संभव हो सका उसके लिए उसने काम शुरू किया। ...और जल्द ही वह आंदोलन की एक प्रमुख कार्यकर्ता बन गयी।''[4] कर्दम जी के छप्पर उपन्यासका उद्देश्य ही प्रचलित सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाना है। चंदन दलित लोगों में अस्मिता जगाने का प्रयास करता है तथा रजनी गांव में सवर्ण लोगों की मानसिकता बदलने का कार्य करती है।

डॉ. जयप्रकाश कर्दम ने अपनी कविताओं में दलित स्त्री के ऐसे ही यथार्थ पूर्ण मार्मिक चित्रण किये हैं जिनसे एक जिंदा इंसान की रुह कांप उठे|

"नोचे गए हैं निर्ममता से
बेबस स्त्रियों के उरोज और नितम्ब
उनकी योनियों में ठोके गए हैं
जातीय अहं के खूटे|"[5]

दलित स्त्री सदियों से वर्तमान तक तीन अभिशापों से गुजर रही है| उनकी इसी बेवसी और लाचारी का फायदा उनके द्वारा उठाया जाता है जो समाज के ठेकेदार बनके बैठे हुये हैं| जिनकी बहसी नजर में उस दलित स्त्री के अंग-अंग के चित्र् उनकी मन मस्तिष्क पर छाप छोड़ चुके है| बस उसकी कि बेवसी के इंतजार में बैठे होते हैं कब वह उनके पास दया कि भीख मांगने आये और वह कब उस पर भूखे भेड़िये कि तरह झपट पड़े |

आज भी हमारा समाज इतनी विषमताओं से भरा है और उसकी कीमत किसी न किसी प्रकार से दलित समाज को ही चुकानी पड़ती है| चाहे वह आर्थिक रुप से हो या सामाजिक रुप हो हर रुप मे दलित का ही शोषण हो रहा है|

"गर लोग पाएगें तुझे अज्ञान की अनगढ़ धरा
शान क्या मेरी रहेगी सोच माँ तू ही जरा
अफसरी की झोंक में यह पुत्र जो था कह गया
कलिया की उम्मीदों का घर था भर भरा कर ढह गया|
मुझको नहीं था ये गुमां तू यहां तक गिर जाएगा
समझेगा मां को तुच्छ तू इतना बड़ा हो जाएगा|"6

डॉ.जयप्रकाश कर्दम ने अपनी कविताओं में दलित स्त्री के साथ होने वाले अमानवीय अत्याचारों एवं शोषण को समाज के सामने यथार्थ रुप में प्रस्तुत किया कि इस वैज्ञानिक इक्कीसवीं सदी में दलित स्त्री को को सामंती समाज केवल भोग विलास कि वस्तु समझता है| आज भी उसे सामाजिक एवं आर्थिक अभिशापों से गुजरना पड़ रहा है| जो एक लोकतांत्रिक देश को विश्व जगत के सामने शर्मसार कर रहा है |

डॉ. जयप्रकाश कर्दम की प्रसिद्ध दलित कहानियों की एक लंबी श्रृंखला है। उन्होंने तलाश तथा खरोंच कहानी संग्रह में अपना भोगा हुआ दर्द समाज में बीता हुआ दर्द ही लिखा है। कर्दम की 'तलाश' कहानी संग्रह में ऊंच-नीच तथा जातीय व्यवहार का अनुभव मिलता है । 'तलाश' कहानी के माध्यम से डॉ. कर्दम ने सवर्णों की मानसिकता दिखाई है । 'तलाश' कहानी का पात्र रामवीर सिंह वह एक विक्रीकर अधिकारी है । उसे गुप्ता के यहां एक किराये का मकान मिला। वह अकेले होने के कारण घर की साफ- सफाई के लिए और खाना बनाने के लिए रामबत्ती को रख लिया जो जाति से दलित है । परंतु मकान मालिक गुप्ता की पत्नी को यह बात ठनकी की एक दलित महिला उसका घर गंदा कर रही है । यह सुन रामवीर सिंह को गुप्ता समझाता कि '' इन्सान तो सब है साहब। पर इन्सान -इन्सान में भेद होता है। सब इंसान

बराबर नहीं होते। हजारों साल समाज में यह भेद बना हुआ है। समाज के बीच समाज के अनुसार चलना पडता है। समाज जिन बातों को मानता है हमें भी उन बातों को मानना पडता है। यहि मोहल्ले को यह पता चल गई कि हमारे घर में चुहडी खाना बनाती है तो मुसीबत आ जाएगी।''[7] इससे आज के सवर्ण समाज की मानसिकता का परिचय होता है। यहां जातीवाद की जडो की गंभीरता और गहराई का पता चलता है। साथ ही सवर्ण अपनी पुरानी सोच बदलने को तैयार नहीं है। डॉ. कर्दम ने पात्रों के द्वारा दलितों की स्थिति बताई है।

दलित स्त्री साहित्यकारों की संख्या कम होने के कारण (केवल २%) शिक्षित और स्वालम्बी स्त्रियों को छोड़कर शेष की स्थिती आज भी पिछड़ेपन की शिकार है। समाज में वर्णव्यवस्था, जातिव्यवस्था के समान ही नारी भी दलित स्थिती है यह बात बिल्कुल सत्य है। जिस तरह ये समाज में स्त्री के प्रति मनुवादी अवधारणा स्त्री को पुरूषों से हमेशा छोटा या निम्न बनाये रखने की धारणा है। इस धारणा व्यवस्था में शोषित स्त्री शुरू से लेकर वर्तमान तक धर्म, कर्म, पाप और पुण्य के नाम पर लोक व्यवहार के गढ़े आधार पर अत्याचार अनाचार और दुराचार सहकर भी इस व्यवस्था को धारण करते हुए आई है। जिसमे शिक्षा तथा आर्थिक सामाजिक स्वावलंबन ने वंचित नारी इस शोषण का डरकर मुकाबला भी नही कर पाती है'।''[8]

आज समाज में सबसे दयनीय स्थिति दलित नारियों की है। नारी सच्चे अर्थो में अबला थी उसका सारा जीवन माँ, बाप, भाई और पति के आश्रय में व्यतित होता था। वह पुरूष की दासी थी और उसके जीवन का लक्ष्य बच्चे पैदा करना था और उसका पालन-पोषण करना मात्र। माता-पिता के लिये पुत्री की जन्म एक अभिशाप समझा जाता था। नारी के लिये शिक्षित होना एक अशुभ और अपरिहार्य दोष समझा जाता था । दलित नारियो के लिये उच्च वर्णो की उचितानुचित आज्ञाए शिरोधार्य करना ही उनके लिये कल्याणकारी था।''[9] उनकी कोई प्रतिष्ठा नही थी बेगार उनका भाग्य था, अशिक्षा उनका जन्म सिद्ध अधिकार था।

दलित महिलाओं की अपनी पारिवारिक अनेक समस्याएं होती है जिन्हें वह अपने सहयोग से सुलझाती है। आर्थिक समस्या के लिये वह स्वंय श्रम करके नौकरी करके घर परिवार को आर्थिक सहयोग देती है। घरेलू समस्याओ को सुलझाने की अधिक जिम्मेदारी स्त्रियों पर ही होती है, जिसमें वह हमेशा उलझी रही है अतः वह दलित आन्दोलन से जुड़कर समाज को लाभ नही दे पाती है। अतः दलित स्त्रियों से जुड़े अनेक प्रश्न है। इन प्रश्नो का समाधान तभी हो सकता जब हम बाबा साहेब के विचारो को समझकर दलित स्त्रियाँ अपने भविष्य की योजनाएं बनाये और आगे बढ़ने का प्रयत्न करे साथ दलित समाज में जन-जागृति फैलायें। बाबा साहेब ने नारी को 'मुक्तिदाता' कहा हैं। आपने दलित, शोषित, पीड़ित एंव अशिक्षित स्त्रियों में क्रान्ति करने की चेतना जाग्रत की। जिन्हे सदियों से सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एंव राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखा गया था, उनकी अस्मिता से परिचित कराया तथा नारी मुक्ति आंदोलन को गति प्रदान की ओर उन्हे समानता, स्वतंत्रता एंव मौलिक अधिकार दिलाकर शक्तिशाली भी बनाया वही प्रत्येक क्षेत्र को बिना लिंग भेद किये समानाधिकार के अवसर प्रदान किए, ताकि स्त्रियाँ हीनता एंव दासता की बेड़ियों को तोड़कर स्वतंत्र और निर्भीक जीवन जी सके। आपसे प्रेरणा लेकर अनेक दलित स्त्रियों सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एंव राजनैतिक गतिविधियों के अन्तर्गत अग्रणी होकर आंदोलन किया साथ ही समाचार पत्रों का प्रकाशन एंव लेखन कार्य भी किया।

नारी मुक्ति आन्दोलन ने एक नई दृष्टि स्त्री लेखन को दी है। वे अपने शोषण के खिलाफ खासकर

यौन शोषण के खिलाफ मुखर हुई है। आज हिन्दी पट्टी में दलित नारी भी सुगबुगाने लगी है। चाहे 'सुशीला टाकमौरे' की एकल पर तीक्षण आवाज हो, चाहे 'हेमलता महेश्वर' के सूक्ष्म और कंटीले व्यंग्य, 'ग्रेस कुजूर' के बौने पर नुकीले 'तीर' या 'कौशल्या बैसेन्ती' के सत्तर वर्षो के स्वानुभव की गंभीर चुनौती, अब वे दलित नारी की ओर से साहित्य के दरवाजे पर दस्तक देने लगी है। 'रजनी तिलक' की पत्रकारिता और 'रजत रानी' 'मीनू' के शोध से दलित नारी के बंद दरवाजे को खोलने का प्रयास शुरू हो चुका है।

भारतीय संविधान के तहत अनेक कानून बनाए गए है पर आज भी महिलाओं का शोषण निरंतर जारी है। महिलाओ के इस शोषण के कुछ मूलभूत स्त्रोत हैं। इन श्रोतों में अशिक्षा, पति और परिवार पर आर्थिक निर्भरता, धार्मिक प्रतिबंध, जाति बंधन, महिला नेतृत्व का अभाव, पुरूषो का महिलाओं के प्रति उदासीन एंव भावहीन रवैया आदि प्रमुख है। इस शोषण एंव उत्पीड़न के कारण सन् १९६२ में दलित पैंथर्स आन्दोलन ने दलितो की परिभाषा में महिलाओं को भी दलित घोषित कर इस कथन को और मजबूत किया परन्तु इन दलितों में भी कुछ दलित है जिनका जिक्र अक्सर आम महिलाओं के शोषण के आवरव तले दब जाता है। अतः दलित महिलाओ की जागृति को अखिल भारतीय रूप देने का समय आ गया।

अतः आज नारी ने शिक्षा, साहित्य, ज्ञान, विज्ञान, राजनीतिक इत्यादि तमाम बौद्धिक और तकनीकी क्षेत्रो में अपनी योग्यता तथा क्षमता का सफल परिचय दिया किन्तु पुरूषो की तुलना में अभी भी पिछ्ड़ हैं। आज ३३ फीसदी आरक्षण की मांग उठना यह सिद्ध करता है राजनीति ही क्या अन्य क्षेत्रो में नारी सहभागिता अभी कम है। प्रश्न उठता है कि क्या अभी तक महिलाओ ने सभी क्षेत्रो में जो भी अपनी उपस्थिति दर्ज करायी है गैर दलित स्त्रियो के साथ-साथ क्या दलित स्त्रियाँ भी है तो दलित स्त्रियाँ इन सभी क्षेत्रो में अपवाद में ही मिलती है। कहा जा सकता है इनकी भागीदारी नगण्य है। वर्तमान समय में दलित लेखिकाएं अपनी कहानियो में सामाजिक बदलाव लाने का आहवान करती है। इनकी कहानियों में आक्रोश है, आग है, लावा है, गुस्सा है तो साथ-साथ संवेदना, मानवीयता और सब्र भी है। न्याय की उत्कट लालसा है तो समानता की तीव्र ललक भी है। भाई चारे की भावना है तो उसके साथ आदर पाने की इच्छा भी बलवती है।

वर्तमान में भी नारी अबला की परिसीमा में अबला बनकर ही रह गयी है । वह सामाजिक संकीर्णताओं में आज भी झुलस रही हैं । अपने को नारी शक्ति का परिचायक समझने वाला पुरुष नारी शोषण में दत्तचित हैं ।

हिन्दी साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि आजादी के बाद नारी विमर्श पर बहुत से शोध कार्य हुये हैं । नारी की संकीर्णता से लेकर उनके जीवन के समस्त क्रियाकलापों को साहित्यकारों ने उतारने का प्रयास किया है । जयप्रकाशजी ने भी सामाजिक चर्चाओ के साथ-साथ अपनी रचनाओं में स्त्री स्वतंत्रय पर भी पर्याप्त चर्चा की हैं । उनकी कृतियों में इसका अवलोकन व्यापक रूप से किया जा सकता हैं । समाज के बदलते रूप को देखकर नारी विमर्श पर केवल चर्चा ही नही की है बल्कि नारी की समस्याओं से जनमानस को अवगत भी कराया हैं । नारी जीवन की प्रत्येक अवधारणाओं पर सूक्ष्म दृष्टि डाली हैं । कर्दम जी की वैचारिक गतिविधियों में बहुत कुछ कहना समीचीन हैं ।

आजादी के पूर्व एवं आजादी के बाद देश के समाज के नारी जीवन के विमर्श पर अनेकानेक चर्चायें होने के पश्चात भी नारी जीवन में समस्यायें अब भी क्यों बनी हुयी ? 'बेटी बचाओं, बेटी पढ़ाओं' अनेकानेक नारे निरंतर लगाये जा रहे हैं । ऐसे में नारी जगत की समस्त समस्यायें आज भी मुँह फैलाये खड़ी है। नारी समस्याओं को लेकर जो मंच जयप्रकाश जी ने तैयार किये हैं ।उनकी कृतियों के माध्यम से नारी

समस्याओं पर विहंगम दृष्टि डाली जा सकती हैं। और समाज को नूतन महत्व दिया जा सकता हैं ।

सन्दर्भ सूची-

1. जयप्रकाश कर्दम, 'करुणा' (उपन्यास), कंचन प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण-2012, पृष्ठ-12
2. डॉ.जयप्रकाश कर्दम, 'इक्कीसवीं सदी में दलित आन्दोलन' (साहित्य एवं समाज-चिंतन), पंकज पुस्तक मंदिर, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2013, पृष्ठ-37
3. जयप्रकाश कर्दम, 'छप्पर' (उपन्यास), पृष्ठ-18
4. जयप्रकाश कर्दम, 'खरोंच' (कहानी संग्रह), पृष्ठ-23
5. जयप्रकाश कर्दम, 'तलाश' (कहानी संग्रह), पृष्ठ-31
6. गूंगा नहीं था मैं- डॉ0 जयप्रकाश कर्दम, तृतीय संस्करण: 2013, सागर प्रकाशन, 77सी/52/1, मुकेश नगर, शाहदरा, दिल्ली-110003, पृष्ठ-27
7. चन्द्रमोहन अग्रवाल, भारतीय नारी: विविध आयाम, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोडा।, पृष्ठ-35
8. रेखा कस्तवार, स्त्री चिन्तन की चुनौतियां, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2006, पृष्ठ-22
9. आशा कौशिक, नारी सशक्तीकरण: प्रतिशत विमर्श एवं यथार्थ, पोईन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2004, पृष्ठ-42